P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-7* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

राष्ट्रवाद एवं संस्कृति की गांधीवादी अवधारणा

दिनेश व्यास
सहायक प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी केंद्रीय
विश्वविद्यालय,
बिहार, भारत

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन आधुनिक भारतीय चिन्तन की विविध धाराओं में भिन्नता के बावजूद यदि किसी मूलतत्व को उच्चतर स्तर पर देखता है तो वह राष्ट्रवाद के प्रति राजनीतिक प्राथमिकता के स्थान पर समय सामाजिक दृष्टि की परिणति। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के ऐतिहासिक सन्दर्भ में स्मरणीय है कि भारत की अवधारणा किसी भी युग में प्राथमिक नहीं मानी गई। प्रमाणिक स्तर पर यदि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के मूल अवतरण को स्पष्ट करना है तो आवश्यक हे कि "राज्य राष्ट्र" एवं "सांस्कृतिक राष्ट्र" के मूल अन्तर को इस आधार पर स्पष्ट करना होगा कि अनेक "राजनीतिक राष्ट्र" भी है। जिनकी निर्णायकता राज्य–सम्बद्ध कारकों से युक्त है। सामाजिक सन्दर्भ का निर्णायक आश्य उन सांस्कृतिक मानकों से है जो परम्परा, संस्थाओं, इतिहास, कानून, पंथ, परम्पराओं, भाषाओं, प्रजाति जैसे कारकों से अनुप्रमाणित एवं निर्मित होते हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का निर्माण एवं व्यवस्थित स्वरूपण इन्हीं कारको से होता है।

मुख्य शब्द : सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राज्य राष्ट्र, सांस्कृतिक राष्ट्र, राजनीतिक राष्ट्र, लोकजीवन, लोकशक्ति, अन्तर्राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास में आध्यात्मिकता पूरित प्राथमिकताओं को अगर सर्वोपरिता प्रदान की गई, तो इस संकल्प को उग्रवाद का प्रारूप मानना अनुचित होगा। वास्तव में राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक मूल्यों की पुर्नस्थापना न केवल स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता की द्योतक है अपितु वह किसी समाज विशेष तक परिसीमित न होकर वैश्विक सदाशय, बन्धुत्व एवं अन्नत पारिवारिकता की पोषक है। भारतीय सन्दर्भ में विवेकानन्द, अरविन्द घोष, रविन्द्रनाथ ठाकुर, नेहरू एवं गांधी का योगदान राष्ट्रवाद तथा अन्तर्राष्ट्रवाद के बीजारोपण के पश्चिमी राष्ट्रवाद से भिन्न स्तर पर देखने की स्थिति में ही अनेक विरोधाभासों का निराकरण सम्भव है। यदि भारतीय सन्दर्भ में लौकिक एवं अलौकिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक द्वन्द्व को सांस्कृतिक समायोजना द्वारा परिष्कृत किया गया, तो इस वास्तविकता को स्वीकार ने में ही व्याख्यात्मक एवं व्यावहारिक स्थिति की ज्ञातव्यता सम्भव है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद एकांकी स्तर पर राजनैतिक कार्यक्रम एवं आधारभूत सत्व नहीं रहा है। राष्ट्रवाद को नैतिक दायित्व–संकल्प तथा धर्म का प्रत्यय स्वीकार कर भारतीय विचारक–कर्मण्यवादियों ने राजनीतिक इतिहास की व्याख्या को नवस्वर प्रदान किये। मानव अस्तित्व तथा दायित्व को दैवीय नियति के समकक्ष स्थापित करने के आदर्श का व्यवहारीकरण सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की जननी है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में उल्लेखनीय है कि भारतीय चिन्तन–प्रवाह धारा में "राजनैतिक" का विलग्न अस्तित्व किसी ग्रन्थ, प्रत्यय, दर्शन अथवा निर्वचन में नहीं देखा गया, क्योंकि मूलवृत्त सूत्रबद्ध स्तर पर मानवीय नैतिकता एवं आध्यात्मिक प्राथमिकताओं से अनुप्राणित रहा। गांधी ने इस रेखांकित वास्तविकता को सशक्त रूप दिया। राज्य, राजनीति एवं सम्बंध क्रिया–प्रतिक्रिया को भारतीय विश्लेषकों ने धर्म नीति वृति में संवर्धन हेतु प्रस्तुत किया। आधुनिक भारतीय चिन्तन के सन्दर्भ में यदि "राजनीतिक" का स्थान द्वितीयक रहा तो उसका औचित्य सांस्कृतिक कारकों की प्राथमिकता में स्पष्टता आधारित देखा जा सकता है।

राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक परिकल्पना केवल परिकल्पना अथवा अमूर्त अवधारणा नहीं है, क्योंकि इसकी व्यवहारिकता व्यवस्थापक–स्थापना संवर्धन एवं गत्यात्मकता में आसीन है। यदि पश्चिम में राष्ट्रवाद में निहित स्वतंत्रता स्वराज एवं स्वशासन के स्वायत्तयुक्त प्रयोजन राजतंत्रात्मक तथा आधारित निरंकुशता के स्वाभिमानी परिकल्पनओं से संयुक्त देखे गये, तो इसमें आश्चर्य नहीं, क्योंकि यूरोप की परिस्थिति एवं समस्या मूलतः भिन्न थी। दूसरी ओर विशेष रूप से

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नीति नैतिकता प्रधान विकासबद्धता तथा आध्यात्मक की व्युत्पति, विकास एवं पर्यावरण–विस्मृत अथवा दिग्भ्रमित सभ्यता की विरासत की शुद्धि तथा पुर्नस्थापना को अपरिवर्तनीय माना गया। इसी योगदान से भारतीय अंग्रेजों की विकल्प प्रस्तुति को समझा जा सकता है। भारतीय राष्ट्रवाद की आत्मा सदैव सांस्कृतिक ही रही, यद्यपि व्यवस्थात्मक, संरचनात्मक तथा प्रक्रियात्मक दायित्व पूर्ति हेतु प्रयासों में भी किसी प्रकार की क्षीणता को स्वीकार नहीं किया गया। इच्छा शक्ति का क्रियान्वयन विलक्षण स्वीकृति में देखा गया, जो अन्तर राज्य प्रभावों की परिपूरकता एवं समायोजित स्थिति को सार्थक बनाती हैं सांस्कृति प्रधान राष्ट्रवाद इसी कारण "सम्पूर्ण व्यक्ति" एवं "सम्पूर्ण समाज" की अवधारणा का पर्याय है।

आधुनिक भारतीय चिन्तन की विविध धाराओं में भिन्नता के बावजूद यदि किसी मूल तत्व को उच्चतर स्तर पर देखा गया तो वह है राष्ट्रवाद के प्रति राजनीतिक प्राथमिकता के स्थान पर समय सामाजिक दृष्टि की परिणति। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के ऐतिहासिक सन्दर्भ में स्मरणीय है कि भारत की अवधारणा किसी भी युग में प्राथमिक नहीं मानी गई। प्रमाणिक स्तर पर यदि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के मूल अवतरण को स्पष्ट करना है तो आवश्यक हे कि "राज्य राष्ट्र" एवं "सांस्कृतिक राष्ट्र" के मूल अन्तर को इस आधार पर स्पष्ट करना होगा कि अनेक "राजनीतिक राष्ट्र" भी है। जिनकी निर्णायकता राज्य–सम्बद्ध कारकों से युक्त है। सामाजिक सन्दर्भ का निर्णायक आशय उन सांस्कृतिक मानकों से है जो परम्परा, संस्थाओं, इतिहास, कानून, पंथ, परम्पराओं, भाषाओं, प्रजाति जैसे कारकों से अनुप्रमाणित एवं निर्मित होते हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का निर्माण एवं व्यवस्थित स्वरूपण इन्हीं कारको से होता है। सम्भव है कि उपर्युक्त कारकों में से कतिपय के प्रभाव तुलनात्मक स्तर पर न्यून अथवा अधिक हो, किन्तु "राजनितिक राष्ट्र" की वास्तविकता का रूपान्तरण "सांस्कृतिक राष्ट्र" व्यवस्था एवं मान्यता में उसी स्थिति में होता है जब "राष्ट्र" विषय प्रभावी कारक प्राथमिकता नहीं बनते।

20 वीं शताब्दी में विशेष रूप से जब "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" को राजनीतिक राष्ट्रवाद के अर्न्तगत परिस्थिति प्रयोजन हेतु प्रस्तुत किया गया तो राष्ट्रवाद स्वतः विभीषिका में परिणित हुआ एवं दो महायुद्धों के बावजूद इस वास्तविकता को नहीं नकारा जा सकता कि राष्ट्रवाद के आवतरण में सांस्कृतिक कारकों का अवमूल्यन केवल हिंसा, प्रसारवाद, एवं प्रतिशोधी गतिविधियों को ही जन्म दे सकता था।

राष्ट्रवाद के इस विकृतीकरण के प्रति भारतीय अग्रज सावधान रहे। इसी सन्दर्भ में गांधी की भूमिका को आशांकित प्रभाव तत्वों से मुक्त स्थिति में देखा जा सकता है। इसी वास्तविकता में भारतीय राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक अस्मिता के नव प्रकरण स्थापित हैं। वैश्विक समाज को वास्तविकता एवं सम्भावनाओं को प्राथमिकता मान कर गांधी ने राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में मूलतः अस्मिता–अवबोधन एवं प्रयोजनयुक्त दायित्व माना। गाँधी को शास्त्रीय रूप से राष्ट्रवाद का समर्थक मान लेने मात्र लेने मात्र से उनके दर्शन एवं कर्मण्यता की समग्रता को वस्तुनिष्ठ स्तर पर अभिव्यक्त करना सम्भव नहीं है। इस सन्दर्भ विशेष में, गाँधी राष्ट्रवादी आग्रहों के निकटों एवं उनके प्रति समर्पित अवश्य रहे, किन्तु आधारभूत वास्तविकता यह है कि गांधी ने राष्ट्रवाद को परिसीमित दायित्व, संकल्प एवं प्रयोजन नहीं माना। परतंत्र राष्ट्र के सामयिक सन्दर्भ में गांधी की प्राथमिकता राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति एवं व्यवस्था रूपांतरण द्वारा सामयिक सन्दर्भ में गांधी की प्राथमिकता राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति एवं व्यवस्था–रूपांतरण द्वारा स्वशासन एवं सूराज से अवश्य, संयुक्त रही। किन्तु अन्तोगता "राजनिति" एवं "राजनिति जीवन" को पर्याप्त एव संकुचित माना एवं सशक्त विकल्प के स्तर पर "लोकजीवन" एवं "लोकशक्ति" की अपवाद रहित अनिवार्यता का समर्थन किया। गांधीजी की मूल कृति "हिन्द स्वराज" इस सन्दर्भ में अधिकृत कथन है। गांधी ने राष्ट्रवाद को स्वतंत्रता प्राप्ति एवं अधिकारों की अबाधित उपलब्धि के प्रयोजन हेतु आवश्यक प्रथम चरण माना। गांधी का आशय था कि साम्राज्य औपनिवेशक आरोपण से मुक्त होकर समाज का रूपान्तरण जनशक्ति में हो एव प्रत्येक व्यक्ति को नागरिक स्वायत्ता, स्वअभिव्यक्ति, समाज कल्याण एवं प्राकृतिक अधिकारों की उपलब्धि निश्चित रूप से ग्राह्य हो, जिसके आधार पर सम्पूर्ण समाज वैश्विक समाज की सेवाएं, परिपूरक भूमिका निर्वाह करने में, सतत् क्षमताओं को साकार कर सकें।

इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में गांधी ने न केवल राष्ट्रवाद, राजनीति एवं राजनीतिक जीवन को ही नवस्वरूप दिया। बल्कि राष्ट्रवाद एवं अन्तर्राष्ट्रवाद के कृत्रिम भेद का निराकरण कर मानवीय दृष्टि प्रस्तुत की।

ज्ञातव्य है कि गांधी यद्यपि दक्षिण अफ्रीका एवं तत्पश्चात् भारतीय राजनीति में पूर्णतः संलग्न रहे, किन्तु इसके बावजूद उनकी बुनियादी मान्यता यही रही कि राजनीति का कायाकल्प करना अनिवार्य है। गांधी ने इसी आधार पर स्पष्ट किया कि स्थापित राजनीति में शक्ति सम्बद्ध हिंसा एवं गोपनीयता, आरोपित एवं कल्याणकारी दावे, सत्ता, अधिग्रहण प्रेरित स्वार्थ परायणता तथा अन्याय एवं असमानता के नित्य नये साधनों की बढ़ोतरी, नग्नरूप से राजनीति की वास्तविकता के द्योतक प्रमाण है। गांधी ने स्पष्ट किया कि राजनीति के मानवीकरण एवं आध्यात्मीकरण द्वारा ही वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय लक्ष्य की सिद्धी समीव है क्योंकि राज्य व्युत्पति एवं वास्तविकता के स्तर पर हिंसा की समग्रता एवं निरन्तरता का द्योतक है। इसी आधार पर गांधीजी ने प्रतीकात्मक स्तर पर रामराज्य को समाधार माना। रामराज्य किसी प्रकार से भी जाति अथवा मान्यता विशेष से बढ़कर सांस्कृतिक उत्प्रेरणा एवं स्त्रोत वास्तविकता था। गांधी की दृष्टि में रामराज्य का आदर्श निहित व्यवस्थात्मक स्वशासन की अपेक्षा, उस लक्ष्य एवं दृष्टि को परिलक्षित करना है, जो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन की अनवार्यता की द्योतक है। इसी कारण गांधी चिन्तन एवं प्रयोजन के वृहत वृत में राजनीति एवं राज्य की निर्णायकता आंशिक एवं परिसीमित है। अवश्य ही गांधी ने ब्रिटिश शासन से मुक्ति का आह्वान किया क्योंकि भारत पर आसुरी शासन के परिणाम स्वरूप भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक बन्धनों एवं मन्त्रणाओं को अनैतिक एवं अमानवीय रूप से लागू किया गया। गांधी ने

स्पष्ट किया है कि संक्रमण की परिसीमित आवश्यकता से परे न तो राज्य और न ही राजनीति, न ही शक्ति और न ही प्रदत्त संस्थापक प्रक्रियात्मक उपलब्धियां आवश्यक है।

गांधी ने स्वीकारा कि राज्य वैसे ही राजनीतिक शक्ति अभीष्ट प्रयोजन नहीं है क्योंकि गांधी ने समसामयिक राजनीतिक जीवन में भागीदारी तथा नेतृत्व भूमिकाओं का निर्वहन करने के बावजूद दोनों को नकारा।राजनीतिक शक्ति एव राज्य प्रदत्त अवसरों को केवल संक्रमण कालीन दायित्व पूर्ति हेतु राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन एवं कल्याण–योजनाओं की सतत् क्रियान्वित हेतु संक्रमणकालीन साधन माना। गांधी ने स्पष्ट किया कि लोकजीवन के स्तर विकास क्रम में स्वतः स्वानुशासन एवं स्वसंचालन क्षमता–वृद्धि होने पर औपचारिक प्रतिनिधियों की आवश्यकता भी नही रहेगी। गांधी चिन्तन में यह व्यवस्था जाग्रत अराजकता है जिसे दार्शनिक अराजकता माना गया। ऐसी व्यवस्था में राज्य का शनैः–शनैः अस्तित्व–नाश स्वाभाविक है एवं जनसमाज ही अन्ततः प्राधिकारी है। स्पष्ट है कि प्रकार राजनीति, राज्य, शक्ति, सम्प्रभुता एवं सम्बद्ध अवधारणाओं, संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का नवनिर्वचन कर गांधी ने राजनीति एवं राष्ट्रवाद को भी गुणात्मक एवं मानवीय मूल्यों से समेकित किया।

गांधी ने हिन्द स्वराज्य में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि राजनीतिक शक्ति एवं अन्याय तथा शोधन से उत्पन्न समृद्धि तथा समपन्नता न केवल अपराध है बल्कि अनैतिक शासन–व्यवस्था का अनिवार्य परिणाम भी है। हिन्द स्वराज्य एकांकी स्तर पर पश्चिमी सभ्यता, अविवेकी औद्योगिकीकरण, उपभोक्ता–संस्कृति एवं अनाधिकृत सुविधा भोग प्रवृति की समालोचना मात्र नहीं है बल्कि विमानवीकरण की घातक अनिवार्यताओं के विषय में शाश्वत चेतावनी भी है। यदि एक ओर गांधी ने अपने विकल्पों को हिन्द स्वराज में स्थापित किया तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद की उपलब्धि हेतु मानवीय वैश्विकता को सर्वोपरि माना।

परिणामस्वरूप गांधी ने जिन मूल्यों को लोकशक्ति, गांधी ने जिन मूल्यों को लोकशक्ति, लोकस्वराज्य एवं सम सामाजिक संरचना हेतु अनिवार्यता माना, वे सदाशय, सहकार, वर्ग समन्वय एवं परिपूरकता, शांति, अहिंसा एवं मानवीय मानकों से अनुप्रणित थे। ब्रिटिश साम्राज्य वाद को एकाकी रूप से दोषी मानकर गांधी ने स्पष्ट किया कि भारत की स्वतंत्रता एवं स्वायत्ता का क्षय एवं नाश इस कारण नहीं हुआ कि साम्राज्यवादियों ने भारतवर्ष पर विजय प्राप्त की बल्कि इस कारण सम्भव हुआ कि भारतवासियों ने विदेशी आरोपण को सहर्ष स्वीकारा एवं विचार संस्था तथा प्रक्रिया के अनेक अनावश्यक एवं कलुषित घटकों को सह रूप से स्थापित करने में सहयोग प्रदान किया। इस विरोधाभासी स्थिति का दायित्व भारतवासियों पर था, न कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों पर क्यों कि विदेशी से किसी अन्य तंत्र प्रक्रिया की अपेक्षा करना अदूरदर्शितामात्र था। एक बार प्रतिलिपिवादी स्थापना की स्वीकृति के पश्चात् भारतवासियों की ओर से किसी प्रकार का सशक्त प्रतिवाद नहीं हुआ एवं न ही आरोपित व्यवस्था के निराकरण हेतु कोई राष्ट्रीय आन्दोलन उद्यत किया गया। इसी सन्दर्भ में गांधी ने रेलमार्ग प्रसार, साम्प्रदायिकता, न्याय विरोधी कानून व्यवस्था, पश्चिम पथ्योपचारप्रणाली, नौकरशाही की अहम् एवं आर्थिक दुर्गति के विषय में सशक्त समालोचना प्रस्तुत की। गांधी ने मूलतः इस सत्य को उजागर किया कि पश्चिमी व्यवस्था संयत्र की प्राणदायिनी राजनीति को अपनाकर भारत में लोकनीति एवं लोकशक्ति को असहाय बना दिया गया।फलतः राज्य एवं व्यक्ति की नैतिक स्वतंत्रता तथा स्वत्व का नाश होना स्वाभाविक हो गया।

राजनीति एवं राज्य सम्बंद्ध अवधारणा एवं व्यावहारिक सार्वभौमिकता का स्वाभाविक प्रवाह बलप्रवर्तन, शोषण, अर्जन–प्रवृति, केन्द्रीय एवं स्वार्थ परायण आयामों में होना स्वाभाविक था एवं प्रतिनिधि तन्त्र के मिश्रण का प्रबल प्रभाव यह हुआ कि जनाधारित व्यवस्था के स्थान पर एकाधिकारी तथा सर्वशक्तिमान राज्य शक्ति में निरन्तर बढ़ोत्तरी हुई। इन आधारों से प्रेरित व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि स्वचालित, स्वावलम्बी एवं स्वाभिमानी प्राथमिकताओं का विनाश हुआ एवं कृत्रिम एवं आरोपित मिथकों को सर्वोपरि उपादेयता प्रदान की गई। प्रस्तुत वातावरण में धर्म का नाश होना स्वाभाविक कथा एवं दूरगामी घातक स्थिति यह हुई कि भारतवासी अपनी मूल अस्मिता से भी विलग्न हो गये।

साध्य एवं साधन के विषय में गांधी के विचार

राज्य को शक्ति का पर्याय मानकर गांधी ने स्पष्ट किया कि शक्ति को साध्य मानने पर असीमित एवं अनवरत कलुषित एवं हिंसक परिणामों में अभिवृद्धि होना स्वाभाविक है, जबकि सुनिश्चित है। गांधी ने इस दावे को अस्वीकारा कि असीमित एवं लोक कल्याण की स्थापना सुनिश्चित है। गांधी ने इस दावे को अस्वीकारा कि असीमित शक्ति की उपलब्धि एवं परिणति में निहित है कि शक्ति का रूपान्तरण किस प्रकार लोकशक्ति में किया जाता है एवं मानवीय साधन के स्तर पर शक्ति केवल आक्रान्ता का शस्त्र मात्र है।

गांधी ने राज्य, राजनीति एवं शक्ति के रूपान्तरण हेतु स्पष्ट किया कि प्रक्रिया को केवल क्रमिक एवं विकासशील उन्नयन द्वारा ही प्राप्त करना सम्भव है। यदि एक ओर मार्क्स ने वर्गराज्य के सन्दर्भ में वर्ग संघर्ष द्वारा वर्ग की समाप्ति के साथ–साथ राज्य को सूखे हुए फूल की भांति स्वंय में व अस्तित्व समापना का निर्वचन किया तो दूसरी ओर गांधी ने राज्य शक्ति के स्थान पर लोकशक्ति एवं सत्ता के समग्र विकेन्द्रीकरण को सामुदायिकता तरणतारण सिद्धान्त में परिलक्षित किया। स्वतंत्रता एवं क्षमता की असीमितता को इंगित कर गांधी ने प्रथम चरण पर प्रतिनिधि तंत्रात्मक लोकतंत्र की स्थापना का समर्थन किया, जिसे राम राज्य जाग्रत अथवा दार्शनिक अराजकता अथवा शुभ लोकतंत्र माना गया। पश्चिमी लोकतंत्र के प्रतिलिपिवादी प्रलोभन से मुक्त गांधी ने जिस व्यवस्था का समर्थन किया उसकी पृष्ठभूमि में गांधी का वह मूल्य परिलक्षित है जो राजनीति का रूपान्तरण व्यवहारिक मूल्यों से संयुक्त स्थिति का द्योतक है। सत्य, सत्याग्रह, ग्रामोन्नयन, नई तालीम, अस्पृश्यता निराकरण, साम्प्रादायिक सद्भाव, कृषक–श्रमिक न्याय, मानवीय एवं सभ्य अन्तक्रिया की निर्णायकरता एवं शोषण–मुक्त अर्न्त सम्बंधित एवं प्रक्रिया को अपरिवर्तनीय एवं दायित्व संकल्प से संलग्न कर

गांधी ने लोकपक्षीय भागीदारी की प्राथमिकता को प्रस्तुत किया तथा कथित लोक कल्याणकारी राज्य के स्थान पर गांधी ने लोककल्याणकारी समाज की प्राथमिकता को स्वीकारा। इस समग्र योजना में गांधी का निर्णायक, प्रयोजन, व्यक्ति की गरिमा एवं समग्र एवं महत्व से अनुप्राणित था।

गांधी के स्वयं के मत में, उन्होंने किसी असम्भव कार्य को प्रस्तुत नहीं किया जबकि उन्होंने स्वीकारा कि आदर्श के अभाव में जीवन का प्रयोजन संदिग्ध हो जायेगा। गांधी ने यह माना कि आदर्श इंगितीकरण एक दिशा निर्देशन है न कि प्रयोजन की अन्तिम स्थिति। राज्यविहीन व्यवस्था मूलतः सृजनात्मक प्रक्रिया की द्योतक है, न कि प्रयोजन की अन्तिम स्थिति। राज्यविहिन व्यवस्था मूलतः सृजनात्मक प्रक्रिया की द्योतक है न कि तत्काल उपलब्धि की प्रमाणिकता। इसी कार्यकारण सर्वोदय समाज के आदर्श के बावजूद गांधी ने स्वीकारा कि किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था एवं शासन की उपस्थिति होना आवश्यक एवं उपयोगी दोनों हैं। राज्य के कार्यक्षेत्र को व्यवावहारिक स्तर पर न्यूनतम बनाने की स्थिति में ही सर्वोदयी समाज की स्थापना सम्भव है। गांधी ने माना कि मानव की प्रकृतिजन्य चारित्रिक स्थिति को नकारने से किसी प्रकार के विकल्पों का निर्धारण नहीं किया जा सकता। गांधी की दृष्टि में इस वास्तविकता की सिद्धि हेतु सभी प्रयोजन धर्म के लिए सशक्त आग्राम को इंगित करते है जो वैयक्तिक एवं सामाजिक नैतिकता के पर्याय है।

प्रतीतकात्मक रूप से वे "अहिंसा पर आधारित साम्यवाद के समर्थक"थे। राज्य राजनीति एवं शक्ति के प्रत्येक प्रकरण में व्याप्त हिंसा को अमानुशिक एवं अनावश्यक मानकर गांधी ने स्पष्ट किया कि केवल अहिंसा की वास्तविकता द्वारा ही लोकशक्ति पर आधारित व्यवस्था की स्थापना सम्भव है। इस सन्दर्भ में स्मरणीय है कि राज्य–अन्तर्निहित हिंसा एवं वैयक्तिक हिंसा, दोनों को अस्वीकार करते हुए गांधी ने अनुशासनविहिन एवं आपातकालीन घटनाक्रम में भी राज्य–केन्द्रित हिंसा को अनैतिक, अमानवीय एवं अधार्मिक माना जबकि दूसरी ओर उन्होंने स्पष्ट किया कि वैयक्तिक हिंसा में समान विकृतियों के बावजूद रूपान्तरण की सम्भावनाएं इस कारण स्वागत है क्योंकि व्यक्ति की आत्मा सदैव विद्यमान है जबकि राज्य की आत्मा का प्रश्न हीं नहीं उठता। इसी आधार पर गांधी ने केवल व्यवस्थात्मक संरचना के रूपान्तरण को अनिवार्य माना, बल्कि सामानान्तर प्राथमिकता के स्तर पर व्यक्ति के ह्रदय रूपान्तरण में ही मानव समाज के अस्तित्व के अधिकृत प्रारूप को स्वीकारा।

विश्व इतिहास में स्पष्ट है कि राजनीति के व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में हिंसा व्याप्त है। क्योंकि प्रत्येक सत्य मूलतः राष्ट्र है। फलस्वरूप "राष्ट्रीय हितों की संकीर्णताएं संकुचन के व्यापक कुप्रभाव सर्वव्यापक हैं। आवश्यक रूप से इस प्रकार के सन्दर्भ में राष्ट्रवाद का विघटन हिंसा, कृत्रिम प्रतियोगिता एवं हिंसक प्रतिशोध में होना स्वाभाविक है। राजनीतिक राष्ट्रीय प्रतिबंधित सन्दर्भ में तथाकथित सांस्कृतिक अहंकार एवं आर्थिक बाजार–केन्द्रित निहितस्वार्थों से न केवल पूंजीवादी, औपनिवेशी एवं साम्राज्यवादी दुराग्रहों का प्रसार होता है बल्कि हिंसा के विविध प्रारूप प्रस्तुत होत है।

गांधी ने राजनीतिक आध्यात्मीकरण का मूल प्रस्तुत किया, जो वास्तव में रानाडे एवं गोखले से उनको विरासत में मिला। गांधी ने स्पष्ट किया कि व्यक्ति एवं सार्वजनिक जीवन को पृथक नहीं किया जा सकता। दोनों क्षेत्रों की समन्वित एवं समीकृत अनिवार्यताओं को नैतिकता, मानववाद एवं अभय पूरित अहिंसा क्रियान्वित द्वारा नव–सृजन के रूप में प्रस्तुत करना ही राजनैतिक एवं लोक जीवन का आध्यात्मीकरण है। गांधी का स्पष्ट आवश्य था कि पंथ, मत, व्यवहार से भिन्न धर्म को राजनीति से पृथक करना असम्भव ही नहीं बल्कि अनिष्टकारी भी है उन्होंने माना कि किसी भी सन्दर्भ में राजनीति एवं धर्म को विलग्न करने का अर्थव्यक्ति एवं समाज को मूल आधारों से पृथक करना होगा। इस मान्यता को अनेक बार भारतीय एवं पश्चिमी विश्लेषकों ने गांधी परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा, क्योंकि पंथ एवं धर्म के मूल विभेदीकरण को रेखांकित नहीं किया गया। फलतः धर्म की अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता की आश्वस्त विरासत का प्रश्न संशयपूर्ण रहा। चूंकि धर्म अनेक प्रकार के स्थापित पंथो व मतों से भिन्न है, अतएव हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, इसाई आदिमत सम्प्रदायों से आशय धर्म का नहीं है एवं इन सभी धाराओं को विशिष्ट विश्वास परम्परा मात्र मानना होगा। अंधविश्वास, प्रतिशोध एवं अहंकार के तथाकथित तर्क से वरीय स्थिति यह है कि धर्म का सत्व, कर्त्तव्य परायणता एवं मानवतावाद से उत्प्रेरित नैतिकता का समायोजना है। सत्य एवं सनातन शुद्धि क्षमता से परिपूरित धर्म वास्तव मे ंराजनीति को नैतिकता से सूत्रबद्ध कर व्यक्ति एवं समाज के असीमित कल्याण एवं सतत परिपक्वता का द्योतक है। इसी आधार पर गांधी ने धर्म एवं नैतिकता को परिपूरक एवं पर्याय माना। गांधी ने स्पष्ट कहा कि धर्माधारित राजनीति द्वारा सामाजिक प्रगत एवं उन्नयन समीव है एवं किसी प्रकार की वैधता राजनीति एवं धर्म को अशक्त बनाती है।

राजनीति के आध्यात्मीकरण के विषय में कई बार विश्लेषक मान बैठते हैं कि किसी पंथ विशेष अथवा साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रायोजन एवं लक्ष्य अवश्य ही आवश्यक होते है किन्तु इस सन्दर्भ को इस कारण नहीं देखा जा सकता कि अस्पृष्टता, अनिश्चय एवं दिग्भ्रमित पूर्वाग्रहों पर आधारित प्रयोजन एवं लक्ष्य सनातन विश्वसनीय एवं स्वीकृति से सदैव विलग्न होते है। दूसरी ओर यदि प्रयोजन सिद्धि के साधनों को अपरिवर्तनीय स्तर पर अहिंसात्मक, नैतिक एवं मानवीय गुणवत्ता द्वारा अनुशासित एवं निर्देशित किया जाव तो उसी स्थिति में राजनीति एवं लोकजीवन का आध्यात्मीकरण सम्भव है। इस परिप्रेक्ष्य में गांधी ने सशक्त स्वर में सत्य को अन्वेषण एवं राष्ट्रीय अस्मिता का आधार माना। बाल गंगाधर तिलक ने अनेक बार शंका अभिव्यक्त की कि राजनीति साधु–सन्यासियों का प्रांगण नहीं है। दूसरी ओर गांधी ने वैयक्तिक, सामाजिक एवं व्यवस्थात्मक सन्दर्भ में धर्म को न केवल सार्वभौमिक स्तर प्रदान किया बल्कि पंथ, विश्वास, मान्यताओं हेतु अबाधित स्वतंत्रता अनिवार्यता को स्वीकार किया। चूंकि धर्म में बल–प्रवर्तन को कोई स्तर नहीं अत एव धर्म के प्रति कोई

आशंका भी अनावश्यक है। इसी सन्दर्भ में गांधी ने धर्मधारित प्रक्रिया एवं व्यवहार को स्वप्रेरित पूर्णता का सशक्त संयंत्र माना एवं धर्म–प्रेरित मूल्यों के आधार पर ही राष्ट्रवादी संकल्प के औचित्य को स्वीकारा।

सत्य एवं अहिंसा, नैतिकता तथा मानववाद पर आधारित धर्म को जीवन्त बनाने पर ही राष्ट्र प्रेम को व्यवहारिकता के अनुकूल बनाया जा सकता है। इसी कर्त्तव्य निर्वाह के परिणामस्वरूप किसी राष्ट्र विशेष एवं अन्य समाजों मे व्याप्त राष्ट्रवादी प्रयोजनों को संकीर्णता परिणामस्वरूप किसी राष्ट्र विशेष एवं अन्य समाजों में व्याप्त राष्ट्रवादी प्रयोजनों को संकीर्णता, स्वार्थपरायणता, एकाकी स्थिति एवं प्रति हिंसा से मुक्त किया जा सकता है।

गांधी ने अनेक बार प्रतिपादित किया की धर्माधारित राष्ट्रवाद पौरूष सामर्थ्य युक्त अवश्य होना चाहिए, किन्त अन्तर्राज्य एवं अन्तर्राष्ट्र नैतिकवृत से विलग्न नहीं हो सकता क्योंकि केवल इसी आधार पर राष्ट्रवाद के मुल सांस्कृतिक एवं नैतिक पक्ष को उजागर किया जा सकता है।

किसी भी राष्ट्र विशेष की एकता संगठित शक्ति एवं संकल्प किसी अन्य राष्ट्र के विरूद्ध नहीं हो सकते। यह सीख भारतीय सभ्यता की विरासत में अंकित है, जहां सावयवी सुराज, दैवीय शासन–व्यवस्था, रामराज्य एवं धर्मराज्य जैसे इंगितीकरण द्वारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उन्नत स्वरूप को स्वीकारा गया। इसी आधार पर सर्वोदयी समाज में ही संभव है कि लोकमत राष्ट्र की अन्तर्निहित शक्ति को अभिव्यक्त करे एवं राजनीतिक शक्ति के स्थान पर लोकशक्ति के वर्चस्व को स्थापित करें। इस प्रकार की राजनीति एवं व्यवस्था के अन्तर्गत सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सम्बल प्राप्त होना सम्भव है। गांधी ने राष्ट्रवाद को अवश्य ही धर्मान्धारित आग्रहों पर आधारित माना क्योंकि धर्म के आधार पर ही लौकिक एवं अलौकिक दायित्वों का निर्वाह सम्भव है।

यद्यपि गांधी के संकल्प में साधन और साध्य को व्यापक रूप में समान महत्व प्रदान किया गया, (ठीक उसी प्रकार जैसे बीज एवं वृक्ष की जीवन्तता निरन्तरता में है) किन्तु गांधी ने प्राथमिकता क्रम में साधनों की वरीयता शुद्धि एवं सदागृही भूमिका के विषय में किसी प्रकार का समझौता नहीं स्वीकारा। राजनीति के आध्यात्मीकरण को परिमार्जित करने हेतु गांधी ने स्पष्ट किया कि साध्य को एकाकी स्तर पर प्राथमिकता देना अन्ततः घातक है जब कि साधनों की प्राथमिकता एवं शुद्धि साध्य को स्वतः नैतिक मानवीय एवं आध्यात्मिक बनाती है। राजनीति के आध्यात्मीकरण हेतु गांधी ने सत्याग्रह की परिवर्तनीयता को स्थापित कर तर्क दिया कि साधनों को साध्य प्रक्रिया की जीवन वास्तविकता एवं आदर्श के व्यावहारिकता की वैद्य स्थिति में रूपान्तिरत करना सभ्यता का परिचायक है।

राजनीति के आध्यात्मीकरण को धर्म प्रेरित परिप्रेक्ष्य में परिलक्षित करने पर स्पष्ट होता है कि गांधी ने साक्ष्य विषयक, विकल्पों को सदैव अनुशासित रखा एवं स्वाभाविक विकास प्रक्रिया की परिवर्तनीयता के अनुरूप साध्य विषयक निर्णय को केवल उसी स्वायत्ता से सूत्रबद्ध माना जो अहिंसा तथा सत्य को न केवल साधन, बल्कि साध्य के स्तर पर स्थापित करता है। इस पारदर्शक निर्णायकता के अन्तर्गत गांधी ने नैतिक निश्चात्मकता की स्थापना की एवं राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक आधारों को स्पष्ट किया, जो प्रचलित राज्य–अवधारणा एवं संस्कारों से मूलतः भिनन है। इसी तर्क पर यह वास्तविकता आधारित है कि नीति परक कर्त्तव्य प्रेरित एवं प्रतिबुद्ध दायित्व–संकल्प को वैयक्तिक, सामाजिक एवं व्यवस्थात्मक स्तर पर सद्वृति, सदाग्रह एवं सत्याग्रह के मूल्यों से विलग्न नहीं माना जा सकता। गांधी चिन्तन एवं कर्मण्यता को संत शैली का पर्याय बनाकर भी इस वास्तविकता को नहीं नकारा जा सकता कि आध्यात्मीकरण के व्यापक सन्दर्भ में गांधी ने नवसांस्कृतिक प्राथमिकताओं का समायोजन किया।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य गाँधी जी की राष्ट्रवादी एवं सांस्कृतिक अवधारणा का वास्तविक रूपान्तरण "सांस्कृतिक राष्ट्र" व्यवस्था एवं मान्यता में उसी स्थिति में होता है जब "राष्ट्र" विषय प्रभावी कारक प्राथमिकता नहीं बनते। 20वीं शताब्दी में विशेष रूप से जब "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" को राजनितिक राष्ट्रवाद के अर्न्तगत परिस्थित प्रयोजन हेतु प्रस्तुत किया गया तो राष्ट्रवाद स्वतः विभीषिका में परिणित हुआ एवं दो महायुद्धों के बावजूद इस वास्तविकता को नहीं नकारा जा सकता कि राष्ट्रवाद के आवतरण में सांस्कृतिक कारकों का अवमूल्यन केवल हिंसा, प्रसारवाद, एवं प्रतिशोधी गतिविधियों को ही जन्म दे सकता था। प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा गाँधी जी की राष्ट्रवादी विचारधारा को दर्शाने का प्रयास किया गया हैं।

निष्कर्ष

व्यक्ति समाज एवं व्यवस्था के नवस्वरूप में गांधी ने नवसांस्कृतिक बीजारोपण द्वारा सौजन्य प्रदान किया। आशय यह था कि स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, न्याय एवं अवसर को भौतिकवादी कृत्रिम संयंत्र से मुक्तकर ऐसी संस्कृति स्थापित हो जो नैतिकता से अनुशासित हो। यद्यपि परतंत्रता–निराकरण हेतु स्वशासन को गांधी ने आवश्यक माना किन्तु व्यवहारिक स्थिति में स्वराज्य एवं सुराज को पर्याय रूप में प्रस्तुत कर गांधी ने राजनीति के आध्यात्मीकरण पर आधारित नवसंस्कृति का प्रारूप प्रस्तुत किया। अन्ततः राज्य के विसर्जन की स्थिति में इस सामाजिक व्यवस्था की सनातनता को गांधी ने स्वाभाविक माना। भौतिक, आर्थिक यंत्रिका शक्ति को अस्थायी एवं अविश्वसनीय सिद्ध कर गांधी ने न केवल शक्ति राजनीति को नकारा बल्कि आत्मशक्ति के आधार पर नवसांस्कृतिक संरचना का प्रारूप प्रस्तुत किया। राजनीति के आध्यात्मीकरण के अन्तर्गत न केवल साधन साध्य नैतिकता स्थापित है, बल्कि सांस्कृतिक नवनिर्वचन द्वारा गांधी ने भयाक्रात एवं कायर व्यक्तियों के चारित्रित रूपान्तरण को भी इंगित किया, क्योंकि अभयपूरित व्यक्ति ही सत्य, अहिंसा, मानवीय नैतिकता एवं अन्याय निराकरण–संकल्प का अधिकारी हो सकता है किसी भी प्रकार की निरकुशंता, सशक्त विरोध करने की सार्मथ्य केवल प्रतिबद्ध व्यक्तित्व में ही निहित होती है। मार्क्स व्यक्तित्व में ही निहित होती है। मार्क्स ने यदि साम्यवादी व्यक्ति को प्राथमिकता दी, तो गांधी ने सत्याग्री के व्यक्तित्व का निर्माण किया जो नवसंस्कृति का आधार है केवल इस प्राकर के व्यक्ति जो मानसिक दृढ़ता, इन्द्रिय, अनुशासन तथा नैतिक प्राथमिकताओं से

प्रतिबुद्ध हो वे ही नव–सांस्कृतिक संरचना एवं जीवन अनुभव के अधिकारी है। मनोदृष्टि, विचार–अभिव्यक्ति एवं कर्मण्यता के सर्वोच्च स्तर पर सांस्कृतिक–आध्यात्मिक वर्चस्व ही सनातन सम्बल की प्रमाणिकता बन सकता है।

अंत टिप्पणी

1. *यंगइण्डिया, 15 सितम्बर, 1924*
2. *चतुर्वेदी मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक हाऊस, चौडा रास्ता, जयपुर 2013 पृ. सं. 341*
3. *यंगइण्डिया, 20 दिसम्बर, 1926*
4. *यंगइण्डिया , 26 नवम्बर 1931*
5. *चतुर्वेदी मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक हाऊस, चौडा रास्ता, जयपुर 2013 पृ. सं. 341*
6. *चतुर्वेदी मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक हाऊस, चौडा रास्ता, जयपुर 2013 पृ. सं. 341*
7. *चतुर्वेदी मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक हाऊस, चौडा रास्ता, जयपुर 2013 पृ. सं. 341*
8. *जौली सुरजीतकौर (संपा.), गांधी एक अध्ययन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली– 2007 पृ. स. 235*
9. *जौली सुरजीतकौर (संपा.), गांधी एक अध्ययन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली– 2007 पृ. स. 236–240*
10. *जौली सुरजीतकौर (संपा.), गांधी एक अध्ययन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली– 2007 पृ. स. 236–240*
11. *गांधी एम. के., कन्सट्रोक्टिव प्रोग्राम इट्सकिनिंग एण्ड प्लस अहमदाबाद नवजीवन 1941*
12. *विपिनचन्द, इण्डियन नेषनल मूवमेन्ट दी लांग टर्म डायना पिक्स, नई दिल्ली पृ. सं. 14–15*
13. *गांधी एम. के, कन्सट्रेक्टिव प्रोग्रामः इट्स मिनिंग एण्ड प्लेस, अहमदाबाद नवजीवन पृ.सं. 5*